द्रव्य

डॉ. नारायण लाल कछारा

1.1 जैन दर्शन में द्रव्य

जैन दर्शन में सृष्टि के मौलिक पदार्थों के अर्थ में 'द्रव्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। वह तत्व जो स्वभाव का त्याग किए बिना उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्त हो, जैन दर्शन का द्रव्य है। हमारे सामने जड़ चेतन जो कुछ है, वह सब कुछ द्रव्य है। छः द्रव्यों से परिपूर्ण इस सृष्टि को जैन दर्शन में लोक कहा जाता है। जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि अनादि अनंत है, उसमें न तो नया उत्पाद है और न प्राप्त सत् का विनाश है वह मात्र पर्याय परिवर्तन करता रहता है। दार्शनिक क्षेत्र में द्रव्य उसे ही कहते हैं जो भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में प्रतिपल परिणमन तो करें, परंतु अपने मौलिक स्वभाव की अपेक्षा नित्य रहे। सत् और द्रव्य एक ही है, अथवा यह भी कह सकते हैं – जो सत् है, वही द्रव्य है। द्रव्य और सत्ता, इनमें मात्र शब्द भेद हैं, अर्थभेद नहीं। न तो असत् से सत् उत्पन्न होते है और न सत् का कभी विनाश होता है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इस त्रयात्मक स्थिति का नाम सत् हैं। जो उत्पाद व्यय युक्त नहीं हैं वे सत् नहीं हैं। जैन दर्शन के अनुसार वस्तु परिणामी नित्य है। प्रत्येक तत्व नित्य और अनित्य इन दोनों धर्मों की स्वाभाविक समन्विति है। तत्व उत्पाद, व्यय और धौव्य इन धर्मों का समवाय है। जगत के समस्त पदार्थ नित्यानित्य हैं। अतः चेतन और जड़, मूर्त और अमूर्त, सूक्ष्म और स्थूल सभी उत्पत्ति, व्यय एवं स्थिति रूप हैं।

1.2 द्रव्य के लक्षण

द्रव्य के तीन लक्षण हैं। जो सत् लक्षण वाला हो, जो उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्त हो एवं जो गुण पर्यायों का आश्रय हो, वही द्रव्य है। गुण और पर्याय के साथ सत्, जिसे द्रव्य कहते हैं, का तन्मयत्व है। द्रव्य, गुण और पर्याय ये तीनों एक साथ पाये जाते हैं, इन तीनों का सहअस्तित्व है। तीनों मे से एक भी विभक्त नहीं होता। द्रव्य में भेद करने वाले को गुण (अन्वयी) और द्रव्य के विकार को पर्याय कहते हैं। द्रव्य, गुण और पर्याय ही वस्तु है। द्रव्य के बिना पर्याय नहीं ओर पर्याय के बिना द्रव्य नहीं तथा गुण के बिना द्रव्य नहीं और द्रव्य के बिना गुण नहीं।

द्रव्य मे गुण सहवर्ती एवं पर्याय क्रमवर्ती कहलाते हैं। सहभावी धर्म तत्व की स्थिति और क्रम भावी धर्म तत्व की गतिशीलता के सूचक होते हैं। पर्याय परिणाम प्रतिपल होता रहता है। द्रव्य की उत्पादव्ययात्मक जो पर्यायें है, वे क्रमभावी हैं। उत्पाद नाश के बिना नहीं और नाश उत्पत्ति के बिना नहीं होता। जब तक किसी एक पर्याय का नाश नहीं, दूसरे पर्याय की उत्पत्ति संभव नहीं और जब तक किसी अपर पर्याय की उत्पत्ति नहीं, पूर्व पर्याय का नाश भी संभव नहीं। एक समय में एक द्रव्य में अनेक उत्पाद और विनाश होते हैं।

1.3 षट्द्रव्य

जैन दर्शन ने द्रव्य छह माने हैं–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय, जीवास्तिकाय एवं काल। ये सभी द्रव्य परस्पर मिश्रित रहकर एक दूसरे को अवकाश देते हैं, परस्पर मिल जाते हैं फिर भी अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते। अस्तिकाय का सिद्धांत जैन दर्शन का सर्वथा मौलिक सिद्धान्त है। यह अस्तित्व का वाचक है। पांच अस्तिकाय निरपेक्ष अस्तित्व हैं। जैसे पुद्गल के परमाणु होते हैं, वैसे ही चार अस्तिकाय के भी परमाणु होते हैं। उनके परमाणु पृथक्–पृथक् नहीं होते, वे सदा अपृथक् रहते हैं, इसलिए वे प्रदेश कहलाते हैं। अस्ति शब्द के दो अर्थ हैं – त्रैकालिक अस्तित्व और प्रदेश। काय

का अर्थ है राशि /समूह। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये पांच अस्तिकाय हैं। अस्तिकाय का अर्थ है बहुप्रदेशी। जिनके टुकड़े न हो सके ऐसे अविभागी प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं। काल अस्तिकाय नहीं है। लोक में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय एक–एक स्कंध है, जीव अनंत है और पुद्गल अनंत स्कंध है। धर्म, अधर्म और आकाश के असंख्य प्रदेश हैं, एक जीव के असंख्य प्रदेश हैं और पुद्गल के अनंतानंत परमाणु हैं। इनका विशेष वर्णन नीचे दिया गया है।

1.4 द्रव्य के गुण

गुण वे हैं जो एक मात्र द्रव्य के आश्रित रहते हैं। गुण स्वयं निर्गुण है। गुण द्रव्य का व्यवच्छेदक धर्म है। वह अन्य द्रव्यों में पृथक सत्ता स्थापित करता है। प्रत्येक पदार्थ में अनन्त गुण होते हैं। पदार्थों में अनन्त गुण (धर्म) माने बिना वस्तु की सिद्धी नहीं होती।

गुण दो प्रकार के हैं। साधारण गुण और विशेष गुण। साधारण गुणों से द्रव्य का अस्तित्व एवं विशेष गुणों से उसका वैशिष्ट्य ज्ञात होता है। द्रव्यों के सामान्य गुण दस हैं और विशेष गुण सोलह हैं। जो गुण एक से अधिक द्रव्य में पाये जाते है वे सामान्य गुण है। विशेष गुण किसी एक द्रव्य में पाया जाता है।

1.4.1 सामान्य गुण

1) अस्तित्व – जिस गुण के कारण द्रव्य का कभी विनाश न हो।
2) वस्तुत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य कोई न कोई अर्थ क्रिया करता रहे।
3) द्रव्यत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य सदा एक सरीखा न रहकर नवीन–नवीन पर्यायों को धारण करता है।
4) प्रमेयत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य ज्ञान द्वारा जाना जा सके।
5) प्रदेशत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य क्षेत्रता को प्राप्त हो अर्थात् जिस गुण के कारण द्रव्य में कुछ न कुछ आकार हो।
6) अगुरूलघुत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य का कोई आकार बना रहे, द्रव्य के अनंत गुण बिखर कर अलग न हो जाएं अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं होता, एक गुण दूसरे गुणरूप नही होता। अगुरुलघुत्व द्रव्य के स्वरूपप्रतिष्ठित का कारणभूत स्वभाव है।
7) चेतनत्व – अनुभूति का नाम चेतना है। जिस शक्ति के निमित्त से स्व–पर की अनुभूति होती है वह चेतना गुण है।
8) अचेतनत्व – जड़त्व को अचेतन कहते हैं। चेतना का अभाव ही अचेतना है।
9) मूर्तत्व – रूपादि भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण भाव मूर्त्तत्व भाव है।
10) अमूर्तत्व – स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित भाव अमूर्तत्व भाव है।

उपरोक्त दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ–आठ गुण पाये जाते हैं और दो–दो नहीं पाये जाते। जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरूलघुत्व, चेतनत्व, ओर अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं। पुद्गल मे अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरूलघुत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये आठ गुण पाये जाते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरूलघुत्व, अचेतनत्व, अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

1.4.2 विशेष गुण

1) ज्ञान–जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समस्त गुण और उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जानता है वह ज्ञान गुण है। यह गुण आत्मा का है ।

2) दर्शन–सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थों को अलग–अलग भेद रूप से ग्रहण नहीं करके, जो सामान्य ग्रहण रूप अवभासना होती है उसे दर्शन कहते हैं। यह गुण आत्मा में पाया जाता हैं। आत्मा की वृत्ति आलोकन या स्वसंवेदन है और वही दर्शन है।

3) सुख–जो स्वाभाविक भाव के आवरण के विनाश होने से आत्मिक शांतरस अथवा जो आनंद उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं। सुख आत्मा का गुण है।

4) वीर्य – जीव की शक्ति को वीर्य कहते हैं। आत्मा में अनंत वीर्य है।

5) स्पर्श – स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा जो जाना जाता है वह स्पर्श है।

6) रस – जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है।

7) गंध – जो सूंघा जाता है वह गंध है।

8) वर्ण – जो देखा जाता है वह वर्ण है।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पुद्गल के विशेष गुण हैं। स्पर्शादि के जो आठ भेद यहाँ बताए हैं वे मूल भेद हैं। प्रत्येक, स्पर्शादि के संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं।

9) गति हेतुत्व – जीव और पुद्गल को गमन में सहकारी होना, गति हेतुत्व है। यह धर्म द्रव्य का विशेष गुण है।

10) स्थिति हेतुत्व – जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी होना, स्थिति हेतुत्व है। यह अधर्म द्रव्य का विशेष गुण है।

11) अवगाहना हेतुत्व– समस्त द्रव्यों को अवकाश देना, अवगाहन हेतुत्व है। यह आकाश द्रव्य का का विशेष गुण है।

12) वर्तना हेतुत्व – समस्त द्रव्यों के वर्तन (परिणमन) में सहकारी होना वर्तना हेतुत्व है।` यह काल द्रव्य का विशेष गुण है।

1.5 पर्याय

जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित है, वह पर्याय है। पूर्व आकार को त्याग कर उत्तर आकार को प्राप्त करना पर्याय रूप है। पर्याय जीव और अजीव दोनों के होती है अतः उसके दो भेद बनते हैं– जीव पर्याय और अजीव पर्याय। परिवर्तन स्थूल भी होता है और सूक्ष्म भी, तदर्थ पर्याय के भी दो भेद बनते हैं – व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्याय। व्यंजन पयार्य स्थूल और कालांतर स्थायी है जबकि अर्थ पर्याय सूक्ष्म और वर्तमानवर्ती है। एक अर्थ पर्याय एक समय तक ही रहती हैं। पर्याय के ओर भी दो भेद हैं – स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय। परिवर्तन स्वभाव से भी होता है तथा विभाव से भी। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों में अर्थ पर्याय ही होती है। जीव और पुद्गल में दोनों अर्थ पर्यायें और व्यंजन पर्यायें होती हैं। स्वभाव पर्याय सभी द्रव्यों में होती है किन्तु विभाव पर्याय जीव और पुद्गल द्रव्य में ही होती है।

प्रदेशत्व गुण के विकार को व्यंजन पर्याय कहते हैं और अन्य शेष गुणों के विकार को अर्थ पर्याय कहते हैं। हम चर्म चक्षुओं से जो देखते हैं वह सब विभाव व्यंजन पर्याय है। नर, नारक आदि चौरासी लाख योनियां जीव द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय हैं। क्रोध – मान, माया, लोभ आदि भी जीव की विभाव व्यंजन पर्याय है। मति आदि ज्ञान विभाव गुण व्यंजन पर्याय हैं। अंत शरीर से कुछ न्यून सिद्ध पर्याय स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय हैं। जीव का अनन्त चतुष्टय स्वरूप स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय है। शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खंड, अंधकार, छाया, धूप, चांदनी आदि पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय है।

द्वयणुक आदि स्कंध पुद्गल की विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। रस से रसान्तर और गंध से गंधान्तर विभाव गुण व्यंजन पर्याय है। पुद्गल का अविभागी परमाणु स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है और उस परमाणु में जो एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श गुण रहते हैं, वे पुद्गल की स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय हैं।

अगुरूलघु गुण के विकार को स्वभाव पर्याय कहते हैं। इसके बारह भेद हैं छः वृद्धि रूप और छः हानि रूप यानि षड्गुण हानि–वृद्धि। अनन्त भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि। इसी प्रकार छः हानि हैं।

उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य की जैन अवधारणा विज्ञान से भी प्रमाणित है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन ने परिणमन के सिद्धान्त को सत्यापित करते हुए कहा कि ऊर्जा द्रव्य में और द्रव्य ऊर्जा में बदली जा सकती है। आइन्स्टीन से पूर्व वैज्ञानिक जगत में यह माना जाता था कि द्रव्य को ऊर्जा में या शक्ति को द्रव्य में नहीं बदला जा सकता। दोनों स्वतंत्र है। न्यूटन, गेलेलियो आदि ने ऊर्जा को भारहीन व पदार्थ से असंबद्ध माना था। किंतु आइन्स्टीन ने यह सिद्ध कर दिया कि पदार्थ और ऊर्जा मे कोई अन्तर नहीं हैं। द्रव्य और ऊर्जा भिन्न नहीं एक ही वस्तु के रूपान्तरण है। उत्पाद, व्यय और धौव्य का चक्र द्रव्य मात्र में प्राप्त होता है। स्थिति और परिणाम एक ही वस्तु के दो अंश हैं। द्रव्यगत सापेक्षता की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या जैन दर्शन की अपनी विशेषता है।

1.6 द्रव्यों के उत्तरगुण

छह मूल द्रव्यों के उत्तर गुण निम्नलिखित है।

1) परिणामी – अपरिणामी

अ) परिणामी – यह लोक परिणमनशील स्वभाव वाला हैं। भिन्न रूप धारण करना अर्थात् व्यंजन पर्याय को परिणमन कहा गया है। जीव और पुद्गल परिणामी हैं। धर्मादिक द्रव्य में जीव पुद्गल की तरह अशुद्ध परिणमन नहीं होता इसलिए वे अपरिणामी है। अर्थ पर्याय की अपेक्षा सर्व जीवादि द्रव्य विजातीय परिणमन नहीं करने से अपरिणामी हैं। परन्तु अपने सजातीय परिणमन की अपेक्षा से सर्वद्रव्य परिणामी हैं। परिणमन स्वभाव होने के कारण प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक समय में परिणमन करते रहते हैं। द्रव्यों का समूह ही लोक हैं। इसलिए द्रव्यों के परिणमन से लोक का परिणमन होता है।

ब) अपरिणामी – जिस प्रकार लोक एक दृष्टि से परिणमनशील है, अन्य एक दृष्टि से अपरिणमनशील भी है। अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं होने के कारण द्रव्य में रहने वाला अपरिणामी स्वभाव है।

2) जीव– अजीव

जीव अर्थात् आत्मा चेतन स्वरूप है। चेतन जीव को छोड़कर अन्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल मे नहीं है क्योंकि वे अचेतन हैं।

3) मूर्त–अमूर्त

पुद्गल द्रव्य स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण रहने के कारण मूर्तिक हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं जीव अमूर्तिक हैं। द्रव्यों मे यह मूर्त ओर अमूर्त का भेद स्वभाव से ही है, किसी निमित्त से किया हुआ नहीं है। जो इन्द्रियों से जाना जाय उसे मूर्त कहते हैं और जो इन्द्रियों के अगोचर हो उसे अमूर्त कहते हैं। कोई एक सूक्ष्म रूप स्कंध एवं परमाणु यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने में नहीं आते तथापि इन पुद्गलों में ऐसी शक्ति है कि यदि वे कालान्तर में स्थूलता को धारण करें तो इन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य होते हैं। मन के

विषय मूर्तिक एवं अमूर्तिक दोनों हैं। मति, श्रुतज्ञान का साधन मन है और इनका विषय समस्त द्रव्यों की कुछ पर्याय हैं। शुद्ध पुद्गल परमाणु द्रव्य में रूप आदि चतुष्टय अतीन्द्रिय है।

4) सप्रदेश – अप्रदेश

धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल बहुप्रदेशी हैं। कालाणु और द्रव्य दृष्टि से पुद्गल परमाणु बहु प्रदेशी नहीं हैं। जो क्षेत्र के परिमाण को बताते हैं, उसे प्रदेश कहते हैं।

5) एक रूप – अनेक रूप

धर्म, अधर्म और आकाश एक रूप हैं और इनके प्रदेशों का कभी विघटन नहीं होता है।संसारी जीव, पुद्गल एवं काल अनेक रूप हैं।

6) क्षेत्र–अक्षेत्र

आकाश की अपेक्षा लोक क्षेत्र स्वरूप है। जीव, पुद्गल, धर्म, और अधर्म अक्षेत्र हैं।

7) क्रिया–अक्रिया

जीव और पुद्गल क्रियावान है, क्योंकि उनमें गति पायी जाती हैं। धर्म, अधर्म, आकश एंव काल अक्रिया अर्थात् क्रिया रहित हैं। इनकी अपेक्षा लोक भी क्रिया रहित है।

8) नित्य–अनित्य

धर्म, अधर्म, आकाश और निश्चय काल नित्य है। इनकी अपेक्षा लोक भी नित्य है। जीव और पुद्गल अनित्य है। व्यंजन पर्याय की अपेक्षा जीव पुद्गल अनित्य होने पर भी द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, इसलिए विश्व नित्यानित्यात्मक है।

9) कारण–अकारण

पुद्गल, धर्म, अधर्म एवं काल ये द्रव्य कारण हैं, क्योंकि जीवों के उपकारक हैं। इनकी अपेक्षा लोक भी कारण स्वरूप है। जीव अकारण है क्योकि वह स्वतंत्र है। जीव चेतन स्वरूप, अखण्ड, स्वरूप, अमूर्तिक होने के कारण संसार का कारण नहीं हो सकता है।

10) कर्ता–अकर्ता

जीवकर्ता है। जो कर्ता होता हैं, वही भोक्ता होता है। जीव स्वयं अपने संसार का कर्ता होने पर भी समस्त जीवों का एवं समस्त अजीवों का कर्ता नहीं हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं पुद्गल अकर्ता हैं।

11) सर्वगत – असर्वगत

आकाश सर्वगत हैं क्योंकि वह सर्वत्र हैं। धर्म, अधर्म, काल, जीव, पुद्गल सर्वगत नहीं है क्योंकि वे सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं। इसकी अपेक्षा लोक असर्वगत है। केवल ज्ञान की अपेक्षा केवली भगवान् सर्वगत होने पर भी द्रव्य की अपेक्षा सर्वगत नहीं हैं। स्वात्मा में स्थित होने पर भी केवलज्ञान के माध्यम से लोक अलोक को जानते हैं इसलिए सर्वगत हैं।

12) प्रवेश–अप्रवेश

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अपने द्रव्य स्वभाव छोड़कर अन्य के धर्म में प्रवेश नहीं करते हैं। एक के आकाश प्रदेश में छहों द्रव्य परस्पर अवगाहित होकर रहते हैं इसलिए लोक इसकी अपेक्षा प्रवेश युक्त है। एक दूसरे को अवगाहन देकर परस्पर प्रवेश होकर के अथवा मिलकर रहने पर भी अपने–अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते हैं।

2.1 धर्मास्तिकाय

पांच अस्तिकाय में प्रथम धर्मास्तिकाय द्रव्य है। यह गतिसहायक द्रव्य है। धर्मास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है, काल की अपेक्षा वह अतीत में था, वर्तमान में है और

भविष्य में रहेगा, अतः वह ध्रुव निश्चित, शाश्वत, अक्षय, अवस्थित और नित्य है। गुण की अपेक्षा गमन गुण है, गति में उदासीन सहायक है। यह स्वयं गमन करने वाले जीव और पुद्गल की गति में अपेक्षा कारण है, प्रेरणा करके इनको चलाता नहीं है। अगर चलते हैं तो चलने में सहकारी कारण बनता हैं। जैसे मछलियों को पानी चलने में सहयोग देता है या रेल को चलने में पटरी सहयोग देती है वैसे ही धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गल को उदासीन सहयोग करता है। धर्मास्तिकाय अस्पर्श, अरस, अगंध, अवर्ण, अशब्द, अगुरुलघु, लोक व्यापक, अखण्ड, विशाल और असंख्यात प्रदेशी है। यह अखंड स्कंध रूप है। इसके असंख्यात अविभाज्य सूक्ष्म अंश सिर्फ बुद्धि से कल्पित किए जा सकते हैं। वस्तुभूत स्कंध से अलग नहीं किए जा सकते।

गति शब्द क्रिया मात्र का द्योतक है। नाड़ी का चलना, हृदय का धड़कना, पलक का झपकना, प्रकाश की गति, मन की गति, तरंगों के कम्पन्न, सूक्ष्माति–सूक्ष्म स्पंदन आदि सभी गति की परिधि में आते हैं। धर्मास्तिकाय इन सभी में उपकारक है। यह गति उपग्राहक होते हुए भी स्वयं निष्क्रिय है, गति क्रिया शून्य है। धर्म द्रव्य गति का निमित्त नहीं, सहकारी कारण है।

यहाँ प्रश्न होता है, जब धर्मास्तिकाय निष्क्रिय है तो इसमें उत्पाद आदि कैसे होता है? इस संबंध में कहा गया है कि इसमें क्रियानिमित्तक उत्पाद नहीं है तथापि अन्य प्रकार से उत्पाद है। उत्पाद दो प्रकार का है – स्वनिमित्तक उत्पाद और पर प्रत्यय उत्पाद। प्रत्येक द्रव्य में आगम के अनुसार अनंत अगुरूलघुगुण स्वीकार किए हैं जिनका षट्स्थानपति हानि और वृद्धि के द्वारा वर्तन होता रहता है, अतः इनका उत्पाद और व्यय स्वभाव से होता है। इसी प्रकार पर प्रत्यय का भी उत्पाद आदि होता रहता है। धर्म द्रव्य गति आदि का कारण है, इसकी गति स्थिति आदि में क्षण–क्षण में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार धर्म द्रव्य में पर प्रत्यय की अपेक्षा उत्पाद व्यय है।

2.2 अधर्मास्तिकाय

लोक व्यवस्था के आधारभूत द्रव्यों में दूसरा द्रव्य है – अधर्मास्तिकाय। अधर्मास्तिकाय वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित है अर्थात् अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक प्रमाण है एवं जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक तत्व है। जैसे छाया यात्रियों को स्थिर होने में सहकारी है परन्तु वह गमन करते जीव और पुद्गल को स्थिर नहीं करती वैसे ही अधर्मास्तिकाय गमन करते जीव और पुद्गल को स्थिर नहीं करता परन्तु उनके स्थिर होने में उदासीन सहकारी कारण है। अधर्मास्तिकाय का अपना कोई स्वतंत्र कार्य नहीं है। स्थूल रूकना तो स्पष्ट दृष्टिगत होता है, परन्त सूक्ष्म स्थिति तो दृष्टिगत नहीं होती है। सूक्ष्म ठहरना पदार्थ के पीछे मुड़ने के समय होता है चलता–चलता पदार्थ यदि पीछे मुड़ना चाहे तो उसे मोड़ पर जाकर क्षणभर ठहरना पड़ेगा। यद्यपि रूकना दृष्टिगत नहीं हुआ पर होता अवश्य है। इस सूक्ष्म और स्थूल रूकने में जो सहायक तत्व है, उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं। न धर्मास्तिकाय गमन कराता है और न अधर्मास्तिकाय स्थिर करता है, जीव और पुद्गल स्वयं अपने परिणामों से गति और स्थिति करते हैं। जीव का खड़ा होना, बैठना, मन को एकाग्र करना, मौन करना, निस्पंद होना, आदि जितने भी स्थिर भाव है, वे अधर्मास्तिकाय के कारण हैं। जो स्थिर हैं उन सबका आलंबन स्थिति सहायक तत्व अधर्मास्तिकाय ही है।

अधर्मास्तिकाय भी निष्क्रिय द्रव्य है। यह असंख्यात प्रदेशी है पर उसके प्रदेश द्रव्य से विलग न होकर एक स्कंध रूप अखंड द्रव्य है। अधर्मास्तिकाय व धर्मास्तिकाय दोनों लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर अवस्थित है, व्याप्त हैं। समान परिमाण युक्त होते हुए भी पृथक् अस्तित्व वाले हैं। एक क्षेत्रावस्थिति होने पर भी अवगाहन शक्ति के योग से उसके प्रदेश परस्पर प्रविष्ट हो व्याघात को प्राप्त नहीं होते हैं।

धर्म और अधर्म की यौक्तिक अपेक्षा

धर्म और अधर्म को मानने के दो मुख्य यौक्तिक आधार है :–

1. गति–स्थिति निमित्तक द्रव्य
2. लोक–अलोक की विभाजक शक्ति

यह ज्ञात है कि प्रत्येक कार्य की निष्पति में कारणों की अपेक्षा रहती है। गति–स्थिति में उपादान कारण जीव और पुद्गल स्वयं है। जीव और पुद्गल पूरे लोक में हैं और वे गति करते हैं। गति में निमित्त एक ऐसे कारण की अपेक्षा है जो गति–स्थिति में सहायक बन सके तथा संपूर्ण लोक में व्याप्त हो, स्वयं गतिशून्य हो। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ऐसे द्रव्य हैं जो समस्त लोक में व्याप्त है और जिनकी गतिक्रिया शून्य है। जिसमें जीव आदि षट्द्रव्य हैं वह लोक है, जहाँ केवल आकाश है वह अलोक है । अलोक में जीव और पुद्गल नहीं जा सकते क्योंकि वहाँ धर्म और अधर्म द्रव्य का अभाव है अतः धर्म और अधर्म द्रव्य लोक–अलोक के विभाजक बनते हैं। धर्म ओर अधर्म के अस्तित्व के कारण मुक्तात्मा लोक के अग्रभाग पर जाकर स्थिर हो जाती है क्योंकि गतिसहायक की अलोक में अनुपस्थिति है।

2.3 आकाशास्तिकाय

अस्तिकाय में तीसरा अस्तिकाय द्रव्य आकाशास्तिकाय है। आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा अखण्ड द्रव्य है। द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक तथा अलोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों में शाश्वत है। गुण की अपेक्षा अवगाहन गुण वाला है। हमारे चारों ओर जो भी खाली जगह दिखाई देती है, वही आकाश (Space) है। आकाश का उपकार है – धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल को अवगाह देना। धर्मास्तिकाय आदि को अवगाहन देने वाला लोकाकाश है, परंतु आकाश का अपना कोई आधार नहीं है। यह अनंत आकाश स्वप्रतिष्ठ है। धर्म और अधर्म तिलों में तैल की तरह सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त करके रहते है। अन्य द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है, परंतु आकाश अनंतप्रदेशी है। एक आकाश प्रदेश में इतनी अवगाहन शक्ति है कि वह आकाश प्रदेश एक धर्म द्रव्य का प्रदेश, एक अधर्म द्रव्य का प्रदेश, एक काल द्रव्य, संख्यात, असंख्यात एवं अनंत परमाणु को भी अवकाश दे सकता है।

आकाश दो प्रकार का है – लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश में जीव, जीव के देश और जीव के प्रदेश है। अजीव भी है, अजीव के देश और अजीव के प्रदेश भी है। अजीव भी रूपी और अरूपी दोनों है। रूपी के स्कंध, स्कंध देश, स्कंध प्रदेश और परमाणु पुद्गल इस प्रकार चार भेद है। अलोकाकाश में न जीव है न अजीव हैं। वह एक अजीव द्रव्य देश है, अगुरूलघु है तथा अनंत अगुरूलघु गुणों में संयुक्त है। अनंत भाग कम सर्वाकाशरूप है।

2.4 काल द्रव्य

काल चौथा अजीव द्रव्य है। प्रत्येक वस्तु का वर्णन – जैसे द्रव्य, क्षेत्र, भाव की अपेक्षा किया जा सकता है इसी प्रकार काल की अपेक्षा भी किया जाता है। काल में अचेतनत्व, अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व आदि साधारण गुण और वर्तना हेतुत्व असाधारण गुण पाए जाते हैं। व्यय और उत्पाद रूप पर्यायें भी काल में बराबर होती रहती हैं।

'काल' अस्तिकाय नहीं है। काल का केवल वर्तमान समय ही अस्तित्व में होता है। भूत समय तो व्यतीत हो चुका है– नष्ट हो चुका है और अनागत (भविष्य) अनुत्पन्न है। वर्तमान समय 'एक' होता है, इसलिए इसका तिर्यक् –प्रचय नहीं होता, अर्थात काल 'अस्तिकाय' नहीं है।

काल की वास्तविकता के विषय में जैनाचार्यों में परस्पर मतभेद रहा है। श्वेताम्बर–परम्परा में आचार्यों ने काल के दो भेद किये हैं: व्यवहारिक काल और नैश्चयिक काल। नैश्चयिक काल अन्य द्रव्यों के

परिवर्तन का हेतु है। जीव , पुद्गल आदि द्रव्यों में प्रत्येक समय में जो परिणामन होता रहता है– पर्याय बदलती रहती है, वह नैश्चयिक काल के निमित से है। दूसरे शब्दों मे नैश्चयिक काल को जीव व अजीव की पर्याय कहा गया है।

जो जिस द्रव्य की पर्याय है, वह उस द्रव्य के अर्न्तगत ही है; अतः जीव की पर्याय जीव है और अ जीव की पर्याय अजीव । इस प्रकार नैश्चयिक काल जीव भी है और अजीव भीहै। काल का निरूपण जब निश्चय नय की दृष्टि से होता है , तब वह 'नैश्चयिक काल' कहलाता है; अतः वास्तविक काल 'नैश्चयिक काल' ही माना गया है। दूसरी और काल का जब व्यवहार नये की दृष्टि से निरूपण होता है, तब वह 'व्यवहारिक काल' कहलाता है। कुछ आचार्यो द्वारा व्यवहारिक काल को 'द्रव्य' कहा गया है। काल को व्यवहारिक –दृष्टि से 'द्रव्य मानने का कारण यह है कि काल के कुछ एक उपकार अथवा लक्षण व्यवहार में अत्यन्त उपयोगी हैं और जो 'उपकारक' होता है द्रव्य कहा जा सकता है। जिन उपकारों के कारण काल 'द्रव्य' की कोटि में गिना जाता है, वे मुख्यतया पाँच हैंः वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ।

'वर्तना का अर्थ है–वर्तमान रहना– किसी भी पदार्थ के वर्तमान रहने का अर्थ यही है कि उसका अस्तित्व कुछ 'अवधि' तक होता है। यह 'अवधि' शब्द का ही सूचक है। यद्यपि 'काल ' किसी भी द्रव्य को अस्तित्व की अवस्थिति प्रदान नही करता , फिर भी जिस अवधि– तक पदार्थ रहता है, वह काल के उन सब क्षणों की सूचक हैं जिसमें पदार्थ का अस्तित्व बना रहता है। 'वर्तना' की तरह 'परिणमन' को भी 'काल' के बिना नही समझाया जा सकता । जब किसी पदार्थ में परिणमन होता है, तब स्वभाविक रूप के परिवर्तन की कालावधि का सूचन हमें होता है। 'क्रिया' में गति आदी का समावेश होता है। 'गति' का अर्थ है – आकाश प्रदेशों में क्रमशः स्थान –परिवर्तन करना। अतः किसी भी पदार्थ की गति में स्थान परिवर्तन का विचार उसमें लगने वाले काल के साथ किया जाता है। इसी प्रकार ,अन्य क्रियाओ में भी समय का व्यय होता है । परत्व और अपरत्व अर्थात पहले 'आना' और 'बाद में होना' अथवा 'पुराना' और 'नया' ; ये विचार भी काल के बिना नहीं समझाये जा सकते । इस प्रकार व्यवहार में वर्तना आदि को समझने के लिए 'काल' को द्रव्य माना गया है।

व्यवहारिक काल 'गणनात्मक' है। काल के सूक्ष्मतम अंश 'समय' मे लेकर पुद्गल– परिवर्तन तक के अनेक मान व्यहारिक काल के ही भेद हैं। सूर्य –चन्द्र की गति के आधार से इनका माप किया जा सकता है। किन्तु जैन दर्शन के अनुसार विश्व के सब स्थानों में सूर्य –चन्द्र की गति नहीं होती है। एक मर्यादित क्षेत्र जहाँ ये पुद्गल पिण्ड अवस्थित है , को छोडकर शेष स्थानों में दिन ,रात्रि आदि काल –मान नहीं होते । इसलिए यह माना गया है कि व्यवहारिक काल केवल 'समय –क्षेत्र' तक सीमित है।

कुछ अन्य आचार्यों की मान्यता के अनुसार नैश्चयिक काल वास्तविक द्रव्य ह्वै, जबकि व्यवहारिक काल नैश्चयिक काल की प्रर्याय –रूप है। नैश्चयिक काल को द्रव्य मानने की अवधारणा सही प्रतीत होती है क्योंकि जीव और अजीव सर्व लोक में व्यात्त हैं और इस प्रकार इनकी पर्याय नैश्चयिक काल की अवस्थिति सर्वलोक से सिद्ध होती है। व्यवहारिक काल केवल 'समय क्षेत्र ' तक सीमित होने से व्यवहारिक काल को द्रव्य मानने पर काल द्रव्य की अवस्थिति सर्व लोक में सिद्ध नहीं होती।

दिगम्बर परम्परा में 'काल' के विषय में जो प्रतिपादन किया गया है वह उक्त मन्तव्य से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। दिगम्बर आचार्यों ने यद्वपि काल के दो भेद –नैश्चयिक और व्यवहारिक काल स्वीकार किए हैं, फिर भी इनकी परिभाषाएं भिन्न प्रकार से की हैं । सुप्रसिद्ध दिगम्बर आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवती (ई 10वीं शताब्दी) काल के विषय में लिखते हैंः '' जो द्रव्यों के परिवर्तन –रूप , परिणाम–रूप देखा जाता है, वह तो व्यवहारिक काल हैं और 'वर्तना लक्षण' का धारक जो काल है , वह नैश्चयिक काल है। जो लोकाकाश के एक–एक प्रदेश में रत्नों की राशि के समान परस्पर भिन्न होकर एक

–एक स्थित हैं, वे कालाणु हैं और असंख्यात द्रव्य हैं। नैश्चयिक काल, जो कि कालाणुओं के रूप में है, वास्तिविक दव्य है और संख्या की अपेक्षा से असंख्यात हैं, क्योकि लोकाकाश के असंखात प्रदेश हैं और प्रत्येक प्रदेश पर एक –एक कालाणु स्थित है।

ये कालाणु एक –दूसरे से स्वतंत्र हैं; इसलिए काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं बनता। कालाणु– रूप नैश्चयिक काल 'वर्तना' लक्षण के द्वारा जाना जाता है । प्रत्येक द्रव्य के समय –समय में होने वाले परिणमनों में उपादान कारण तो वे स्वम् ही होते है किन्तु इन परिणमनों में निमित रूप से सहायक कालाणु होते हैं और उनकी इस सहकारिता को 'वर्तना' कहते हैं। कुछ आचार्यों के अनुसार द्रव्यों में होने वाले पर्याय– रूप परिवर्तनों में भी प्रति समय जो द्रव्य के ध्रोव्य की अनुभूति होती है, वह वर्तना है। इस वर्तना लक्षण का धारक जो कालाणु द्रव्य है, वह नैश्चयिक काल है। कालाणु स्वयं भी उत्पति , विनाश और धौव्य– रूप त्रिपुटी से युक्त माना गया है। वर्तमान 'समय' की उत्पति होती है , अतीत समय का विनाश और इन दोनों के आधारभूत कालाणु ध्रव रह जाते है। इस प्रकार जो द्रव्य की परिभाषा है, वह कालाणु के लिए लागू होती है और परिणामस्वरूप कालाणु वास्तविक द्रव्य माना गया है ।

द्रव्यों में नवीन और प्राचीन आदि पर्यायों का समय , धडी, मुहूर्त आदि रूप स्थिति को 'व्यवहारिक काल ' की संज्ञा दी गई है। यह व्यवहारिक काल परिणाम , क्रिया ,परत्व , अपरत्व आदि लक्षणों से जाना जाता है। व्यवहारिक काल आदि और अन्त सहित होता है , जबकि नैश्चयिक काल (कालाणु) शाश्वत है– आदि –अंत रहित है। व्यवहारारिक काल स्वयं द्रव्य नहीं है।

3.1 पुद्गलास्तिकाय

इस लोक में दो ही मुख्य पदार्थ हैं–जीव और पुद्गल। शेष चारों द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल सहयोग देने वाले उदासीन द्रव्य हैं। पुद्गल शब्द दों अवयवों वाला है –पुद्+गल। पुद् का अर्थ है मिलना, पूरा होना या जुड़ना। गल का अर्थ है गलना अथवा मिटना। अर्थात् जो भेद संघात से पूरण और गलन को प्राप्त हो वे पुद्गल हैं। यह पुद्गल पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध, आठ स्पर्शी, रूपी, अजीव, शास्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है। पुद्गल के सूक्ष्म से सूक्ष्म विभाग परमाणु से लेकर बड़े से बड़े पृथ्वी स्कंध तक में ये गुण वर्ण, रस, गंध आदि विद्यमान रहते हैं। किसी भी समय इनमें से एक का भी अभाव नहीं रहता। इनमें मुख्य–गौण का अंतर हो सकता है। पुद्गलों का प्रदेश समूह अथवा पुद्गल द्रव्यों का समूह पुद्गलास्तिकाय है। द्रव्य की अपेक्षा से पुद्गलास्तिकाय अनंत द्रव्य हैं। क्षेत्र की अपेक्षा वह लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा से वह ध्रुव, नियत, शाश्वत व नित्य है। सदा था, है ओर रहेगा। जिसमें स्पर्श–रस–गंध–वर्ण की अपेक्षा से तथा स्कंध पर्याय की अपेक्षा से पूरण और गलन हो वह पुद्गल है। परमाणुओं के विशेष गुण जो स्पर्श–रस–गंध–वर्ण हैं उनमें होने वाली षट्स्थानपतित वृद्धि वह पूरण है और षट्स्थानपतित हानि वह गलन है। परमाणुओं में स्कंधरूप पर्याय का आविर्भाव होना सो पूरण है और तिरोभाव होना सो गलन है। स्कंध अनेक परमाणुमय एक पर्याय है, इसलिए वह परमाणुओं से अनन्य है, और परमाणु तो पुद्गल है इसलिए स्कंध भी व्यवहार से पुद्गल है।

पांचों इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ, चाहे वे कुछ भी क्यों न हों, सर्व पुद्गल ही हैं। अगर कोई भी वस्तु एक भी इन्द्रिय का विषय होती है तब यह जानना चाहिए कि यह पुद्गल है, क्योंकि पौद्गलिक इन्द्रियों के द्वारा पुद्गल ही जाना जा सकता है, अपोद्गलिक नहीं।

वर्ण के पांच, गंध के दो, रस के पांच और स्पर्श के आठ भेद पाए जाते हैं।

वर्ण के पांच प्रकार :– कृष्ण (Black), नीला (Blue), लाल(Red), पीत (Yellow), और श्वेत (White)

गंध के दो प्रकार – सुगंध, दुर्गन्ध

रस के पांच प्रकार – तीखा (Pungent), कटु या कड़वा (Bitter), कसैला (Astringent), खट्टा या आम्ल (Sour), मीठा (Sweet)

स्पर्श के आठ प्रकार है, इनके चार वर्ग हैं।

शीत(Cold), व उष्ण (Hot),

स्निग्ध (Positive Charge or Smooth) व रूक्ष (Negative Charge or Rough)

मृदु (Soft), व कठोर या कर्कश (Hard),

भारी (Heavy), व हल्का (Light)

भगवती सूत्र में इन गुणों की विद्यमानता एवं अविद्यमानता के आधार पर द्रव्यों के चार भेद बताए गये हैं:–

1. वह द्रव्य जिसमें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं।
2. वह द्रव्य जिसमें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श होते हैं।
3. वह द्रव्य जिसमें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श होते हैं।
4. वे द्रव्य जिनमें ये कोई भी नहीं होते – इनमें अरूपी द्रव्यों का समावेश होता है।

इसके आधार पर पुद्गल के तीन वर्गीकरण होते हैं।

द्विस्पर्शी परमाणु

चतुःस्पर्शीः सूक्ष्म स्कंध

अष्टस्पर्शी : बादर स्कंध

चतुः स्पर्शी स्कंध सूक्ष्म परिणति वाले होते हैं। वे अनंत प्रदेशी होने पर भी इंन्द्रियग्राह्य नहीं होते हैं। इनमें स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण ये चार स्पर्श पाए जाते हैं।

पुद्गल के चार भेद होते हैं अर्थात् पुद्गल के भेद संघात की क्रिया चार प्रकार से होती है।

1. स्कंध – अनेक परमाणुओं के पिण्ड को स्कंध कहते हैं।
2. स्कंध देश – स्कंध के किसी कल्पित भाग को स्कंध देश कहते हैं।
3. प्रदेश – स्कंध के निरंश अंश (अविभाज्य अंश) को प्रदेश कहते हैं।
4. परमाणु – स्कंध से पृथक हुए निरंश भाग को परमाणु कहते हैं।

इन चार भेदों मे मुख्य भेद तो स्कंध और परमाणु ही है। इन स्कंध और परमाणु की उत्पत्ति तीन प्रकार से होती है – भेद से, संघात से तथा भेद और संघात दोनों से।

भेद – अंतरंग और बहिरंग इन दोनों प्रकार के निमित्तों से संहत स्कंधो के विदारण को भेद कहते हैं।

संघात :– भिन्न–भिन्न हुए पदार्थों के बंध होकर एक हो जाने को संघात कहते हैं।

भेद–संघात–दो परमाणुओं के स्कंध से दो प्रदेशवाला स्कंध उत्पन्न होता है। दो प्रदेश वाले स्कंध और परमाणु के संघात से या तीन परमाणुओं के संघात से तीन प्रदेशवाला स्कंध उत्पन्न होता है। इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनंतानंत परमाणुओं के संघात से उतने–उतने प्रदेशों वाले स्कंध उत्पन्न होते रहते हैं। इन्हीं संख्यात आदि परमाणु वाले स्कंधो के भेद से दो प्रदेश वाले स्कंध तक होते हैं। इस प्रकार एक समय में होने वाले भेद और संघात इन दोनों से दो प्रदेश वाले आदि स्कंध होते रहते हैं। तात्पर्य यह है कि जब अन्य स्कंध से भेद होता है ओर अन्य का संघात तब एक साथ भेद ओर संघात इन दोनेा से स्कंध की उत्त्पत्ति होती है। परमाणु की उत्पत्ति तो भेद से ही होती है।

भगवती सूत्र में द्विप्रदेशी आदि स्कंधों में पाए जाने वाले वर्ण आदि भंगों का विस्तृत निरूपण किया गया है। जैसे द्विप्रदेशी स्कंध–स्यात् एक वर्ण, स्यात दो वर्ण। स्यात् एक गंध, स्यात् दो गंध। स्यात् एक

रस, स्यात् दो रस। स्यात् दो स्पर्श, स्यात् तीन स्पर्श, स्यात् चार स्पर्शों वाला होता है। वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की विभिन्नता के आधार पर द्विप्रदेशी स्कंधों में भी प्रचुर वैविध्य रहता है।

द्रव्य की अपेक्षा स्कंध सप्रदेशी होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा स्कंध सप्रदेशी भी होते हैं और अप्रदेशी भी। जो एक आकाश प्रदेशावगाही होता है वह अप्रदेशी और जो दो आदि आकाश प्रदेशावगाही होता है वह सप्रदेशी है। काल की अपेक्षा से जो स्कंध एक समय की स्थिति वाला होता है, वह अप्रदेशी है जो इससे अधिक स्थितिवाला होता है वह सप्रदेशी है। भाव की अपेक्षा एक गुणवाला स्कंध अप्रदेशी और अधिक गुणवाला सप्रदेशी होता है।

आचार्य कुंदकुंद ने पुद्गल स्कंध के छह भेद बताये हैं।

1. अतिस्थूल (बादर–बादर)–वे पुद्गल स्कंध जो देखे भी जाते है, पकड़े भी जाते हैं। ये ठोस पदार्थ है। जो स्कंध टूट कर पुनः जुड़ नही सके वे अतिस्थूल है जैसे पर्वत, पृथ्वी, पत्थर आदि।
2. स्थूल (बादर)–जो स्कंध पृथक–पृथक होकर पुनः मिल सके, वे स्थूल कहलाते हैं, जैसे घी, जल, तेल, रस, वायु आदि।
3. स्थूल सूक्ष्म (बादर सूक्ष्म)–वे स्कंध जो स्थूल ज्ञात होने पर भी भेदे नहीं जा सकते या हाथ आदि से ग्रहण नहीं किए जा सकते, स्थूल सूक्ष्म है, जैसे प्रकाश, छाया, अंधकार चांदनी आदि।
4. सूक्ष्म स्थूल (सूक्ष्म बादर)–जो चाक्षूस नहीं है, पर अन्य इंद्रियों से ग्राह्य हैं। जैसे शब्द, रस, गंध, स्पर्श के पुद्गल।
5. सूक्ष्म–वे सूक्ष्म पुद्गल जो इन्द्रियग्राह्य नहीं है जैसे कर्मवर्गणा आदि।*
6. अतिसूक्ष्म (सूक्ष्म–सूक्ष्म)–कर्मवर्गणा से भी नीचे के अतिसूक्ष्म स्कंध अथवा अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म* स्कंध। जैसे–द्विप्रदेशी आदि स्कंध।

शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष ये चार स्पर्श मौलिक हैं। हल्का, भारी, मृदुता और कर्कशता आपेक्षिक हैं। हल्का, भारी आदि ये चार स्पर्श अनन्त प्रदेशी स्कंध की स्थूल परिणति के साथ उत्पन्न होते हैं। रूक्ष स्पर्श की बहुलता से हल्का स्पर्श उत्पन्न होता है। स्निग्ध स्पर्श की बहुलता से भारी स्पर्श उत्पन्न होता है। शीत और स्निग्ध स्पर्श की बहुलता से मृदु स्पर्श उत्पन्न होता है। उष्ण और रूक्ष स्पर्श की बहुलता से कर्कश स्पर्श उत्पन्न होता है।

भार का संबंध भारी ओर हल्का स्पर्श से है जो कि पुद्गल द्रव्य का ही गुण है। शेष सब द्रव्य भारहीन होते हैं। केवल हल्का या केवल भारी कोई द्रव्य नहीं होता है। चतुःस्पर्शी पुद्गल स्कंध तथा परमाणु अगुरूलघु है और भारहीन हैं। पुद्गल स्कंधों का जब स्थूल रूप में, परिणमन होता है तब उनमें भार नाम की अवस्था उत्पन्न होती है। अष्टस्पर्शी पुद्गल गुरूलघु होते हैं और भारयुक्त होते हैं।

पुद्गल स्कंध और परमाणु प्रवाह की अपेक्षा अनादि–अनंत हैं। किन्तु स्थिति की अपेक्षा सादि–सपर्यवसति भी हैं। परमाणु परमाणु के रूप में और स्कंध स्कंध के रूप में रहे तो कम से कम एक समय और अधिक से अधिक असंख्यात काल तक रह सकते हैं। उसके बाद तो उन्हें बदलना पड़ता है। पुद्गल की दो प्रकार की परिणतियाँ होती हैं–सूक्ष्म परिणति और स्थूल परिणति । सूक्ष्म सदा सूक्ष्म नहीं रहता, स्थूल सदा स्थूल नहीं रहता। असंख्यातकाल के पश्चात् सूक्ष्म स्थूल में और स्थूल सूक्ष्म में बदल जाता है। एक गुना (Degree)काला पुद्गल कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक असंख्यकाल तक रह सकता है। उसके पश्चात् उसे षट्स्थान पतित वृद्धि से अनंत गुना काला होना ही है। सभी वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के परिवर्तन का यह सार्वभौम नियम है। स्वाभाविक परिणमन प्रत्येक द्रव्य में प्रतिक्षण होता रहता है। व्यंजन पर्याय (स्थूल पर्याय) का परिवर्तन भी असंख्यकाल के पश्चात् निश्चित होता है। सोने के परमाणु असंख्यकाल के पश्चात् उस रूप में नहीं रहते वे दूसरे द्रव्य के प्रायोग्य बन जाते हैं।

केवल ज्ञान मूर्त–अमूर्त सबको जानता है अतः केवली परमाणु को जानते है। अकेवली में अवधिज्ञानी उसे जान सकते हैं। शेष उसे आगम या अनुमान प्रमाण से जानते हैं।

कोई एक सूक्ष्म परिणमन रूप स्कंध एवं परमाणु यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने में नहीं आते तथापि इन पुद्गलों में ऐसी शक्ति है कि यदि वे कालान्तर में स्थूलता को धारण करें तो इन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य होते हैं। इस शक्ति की अपेक्षा उनको इन्द्रियग्राह्य ही कहा जाता है। मन अपने विचार से मूर्तिक–अमूर्तिक दोनों वस्तुओं को जानता है। मन जब पदार्थ को ग्रहण करता है तब पदार्थ में नहीं जाता किंतु आप ही संकल्प रूप होकर वस्तु को जानता है। मतिश्रुतज्ञान कासाधन मन एवं इन्द्रियां हैं। मतिश्रुत ज्ञान का विषय समस्त द्रव्यों की कुछ पर्याय हैं। द्रव्य आगम पुद्गल स्वरूप होने पर भी भाव आगम अमूर्तिक है। अमूर्तिक भाव आगम के द्वारा एवं मन अपने विचारों में मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के पदार्थों को जानता है।

संदर्भ

1 षट्द्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा, डॉ. नारायण लाल कछारा, 2007

2 ब्रह्मण्डीय जैविक, भौतिक एवं रसायन विज्ञान, आचार्य कनकनंदी, 2004

3 स्वतंत्रता के सूत्र, आचार्य कनकनंदी, 1992

4 मोक्ष शास्त्र (तत्वार्थ सूत्र), पं. पन्नालाल जी 'बसन्त', 1978

5 द्रव्य संग्रह आचार्य नेमिचंद सिद्धान्त देव

6 द्रव्य की अवधारणा, साध्वी योगक्षेमप्रभा, 2005

7 विश्व प्रहेलिका, मुनि महेन्द्रकुमार, 1969

8 पंचास्तिकाय

9 अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा, आचार्य कनकनंदी, 2004

10 द्रव्य विज्ञान, साध्वी डॉ. विद्युत प्रभा, 1994